जनांदोलन ही अंतिम विकल्प

■ रंजना कुमारी
(निदेशक, सेंटर फॉर सोशल रिसर्च)

लोकतंत्र में जनांदोलनों की भूमिका काफी अहम रही है। यह भूमिका आज के दौर में काफी बढ़ गई है। आज समाज का गरीब तबका कमजोर है। जनांदोलन ही सरकार और बाजार के बीच उलझे आम जन के मद्दों को उठा सकते हैं। आज मानवाधिकार, महिलाओं से जुड़े मद्दे समाज में सबसे ज्यादा जरूरी दिखाई दे रहे हैं। राजनीति का स्वरूप जनमुखी नहीं रह गया है जिस वजह से ये मद्दे कहीं दब से गये हैं।

एक दौर में जेपी आंदोलन सरीखे जनांदोलन होते थे। मैं खुद इस आंदोलन की उपज रही हूं। हम लोग सड़कों पर उतरे, जेल गये लेकिन आज की परिस्थिति में आंदोलनों का स्वरूप बदल गया है। आंदोलनों में बिखराव की स्थिति आ गई है। इसके कई कारण हैं। आर्थिक अभाव के कारण जनआंदोलनों में संसाधन जुटाने की ताकत नहीं रही। आंदोलनों के विभाजन के पीछे एक कारण और है नेताओं के निजी स्वार्थ। नेता अपने आन्दोलन को तो बड़े जोर-शोर से उठाते हैं लेकिन दूसरों के आंदोलनों को तोड़ने की कोशिश करते हैं। इस कारण साझे आंदोलनों की बात बेमानी सी हो जाती है। कुशल नेतृत्व का अभाव भी आंदोलनों के विभाजित होने की बड़ी वजह है।

आज के राजनीतिज्ञ जनता से अलग हो गये हैं, जिससे उनकी विश्वसनीयता में कमी आई है। लगता है कि नेताओं को अब जनता के सुख-दुख, उनकी समस्याओं से कोई लेना देना ही नहीं रहा। जनांदोलन करने वालों के पास ताकत नहीं है। सारी ताकत राज्य के हाथ में है। नीति निर्माण हो या उनका कार्यान्वयन, जनता को इसके लिये सरकार के सामने ही हाथ फैलाने पड़ते हैं। परिणामस्वरूप आंदोलनकारियों को भी अपनी मांगें मनवाने के लिए सरकार के सामने समझौते करने पड़ते हैं। इस तरह आंदोलन कमजोर पड़ जाते हैं।

आज के बाजारवादी दौर में जैसी जनविरोधी स्थितियां पैदा हो रही हैं उनमें सुधार के लिए जनांदोलन ही अंतिम विकल्प नजर आते हैं

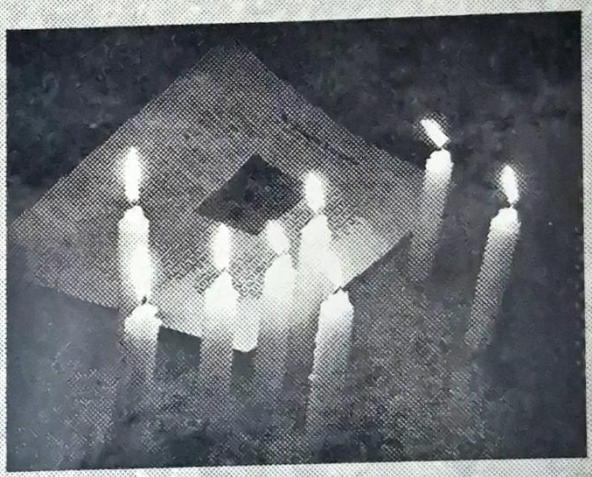

बीते समय में नंदीग्राम, सिंगुर सरीखे आंदोलनों में हमने देखा है कि सत्ता, सरकार और उद्योगपतियों की जुगलबंदी ज्यादा ताकतवर हो गई है, जिससे आंदोलनों को कुचलना आसान हो गया है। लेकिन हम इस दौर को निराशा का दौर नहीं मान सकते। समाज में धीरे-धीरे अमीर गरीब के बीच की खाई और बढ़ रही है। ऐसे में जल्द ही समाज का अपने अधिकारों को मांगने के लिए जनांदोलनों की ओर तो रुख करना ही होगा।

इस तरह के आंदोलनों में महिलाओं की भूमिका को भी नकारा नहीं जा सकता। चिपको आन्दोलन की प्रणेता गौरा देवी से लेकर वर्तमान में सूचना के अधिकार पर कार्यरत अरुणा राय और नर्मदा बचाओ आंदोलन में मेधा पाटकर की सक्रियता से महिलाओं को प्रेरणा मिली है। आज देश भर में कई महिला आंदोलन सक्रिय है जिनमें महिलाओं ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया है। हां, जनांदोलनों की एक बड़ी कमी है कि उनमें महिलाओं की अगुआई बहुत कम देखने को मिलती है। महिला आन्दोलन तब तक चलते रहेंगे जब तक उन्हें बराबरी का हक नहीं मिल जाता। घरेलू हिंसा, महिला विधेयक जैसे मुद्दों पर तो राष्ट्रीय स्तर पर बहसें हुई। स्वयं सहायता समूहों के रूप में महिलाएं देश भर में अपने अधिकारों के लिये काम कर रही हैं।

मीडिया जनांदोलनों पर हमेशा से मुखर रहा है। लेकिन आज के दौर में उसे भी बाजार के अंदर ही बसर करना है। मीडिया संस्थानों के मालिक जनांदोलनों के लिए मीडिया में स्पेस को खत्म करने का प्रयास कर रहे हैं। लेकिन ऐसे कई पत्रकार हैं जो इन विषम परिस्थितियों में भी आंदोलनों के साथ खड़े दिखाई देते हैं। मीडिया के हस्तक्षेप के बिना आंदोलनों की धार को पैना कर पाना संभव भी नहीं है।

जनांदोलनों की चर्चा करते हुए किसान आंदोलनों को दरकिनार नहीं किया जा सकता। चाहे भूमि सुधार हो या किसानों के अधिकारों की मांग, समय-समय पर किसानों ने आंदोलनों के जरिये अपने हक की लड़ाई जारी रखी है। भारतीय समाज की विशेषता जाति रही है। इसी कारण देश में जाति के नाम पर तो लोग आसानी से गोलबंद हो जाते हैं लेकिन पानी, बिजली, सड़क जैसे आम आदमी के मुद्दों पर लोगों को एकत्रित कर पाना मुश्किल हो जाता है। ऐसे में अवसरवादी नेता इस तरह के मुद्दों को जनता का मुद्दा बताकर राजनीति करने से नहीं चूकते। आज के बाजारवादी दौर में जैसी जनविरोधी स्थितियां पैदा हो रही हैं उनमें सुधार के लिए जनांदोलन ही अंतिम विकल्प नजर आते हैं।

■ **प्रस्तुति : उमेश पंत**